सबके दास कबीर

सम्पादक
आदित्य प्रसाद त्रिपाठी

प्रकाशक
प्रभाकर शेजवाडकर
अध्यक्ष कला वैभव,
एम - ११६, बीसवीं लेन
हाउसिंग बोर्ड कालोनी,
परवरी, बार्देश,
गोवा - ४०३ ५२१

© प्रभाकर [redacted]
अध्यक्ष [redacted]
एम - 116, 20 वीं लेन, हाउसिंग बोर्ड कालोनी,
आल्तो बेतीम, परवरी - गोवा - 403 521

प्रकाशन
प्रभाकर शेजवाडकर
एम - 116, 20 वीं लेन, हाउसिंग बोर्ड कालोनी,
आल्तो बेतीम, परवरी - गोवा - 403 521

प्रथम संस्करण :
जनवरी 2000

अवरण - चित्र :
श्यामराव सुतार

मूल्य : 100 रुपये

शब्द रचना : बी. के. प्रिंटर्स, पणजी - गोवा

मुद्रक : सह्याद्रि प्रिंटर्स, खोर्लिम (तिसवाडी) - गोवा

SABAKE DAS KABIR (Hindi)
Ed. by Dr. Aditya Prasad Tripathi
Publishied by : Shri. Prabhakar Shejwadkar
Price : Rs. 100.00

कबीर - काव्य : अरबी-फारसी शब्दावली

- डॉ. इशरत ख़ान

भावाभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है। भाषा की महत्वपूर्ण इकाई शब्द होते हैं। भाषा का महल इन्हीं इकाइयों के सुव्यवस्थित क्रम से निर्मित होता है।

शब्दों की दृष्टि से प्रत्येक भाषा एक प्रकार से खिचड़ी होती है। किसी भी भाषा के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह अपने विशुद्ध रूप में आज तक मौजूद है। भाषा के माध्यम से दो व्यक्ति अथवा दो समुदाय अपने विचार एक दूसरे पर प्रकट करते हैं। अत: भाषा का मिश्रित होना उसका स्वभाव ही समझना चाहिए।

शब्दों की दृष्टि से कबीर की भाषा को देखकर चकित हो जाना पड़ता है। कबीर ने अपने समय में प्रचलित सभी भाषाओं के शब्दों का बेधड़क प्रयोग किया है। उस समय की ब्रज, भोजपुरी, अवधी, खड़ीबोली, बुंदेली, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि भाषा- बोलियों के अतिरिक्त अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषाओं के लोक प्रचलित शब्द सहज ही कबीर-काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। यदि उस समय देश में अंग्रेजी भाषा भी प्रचलित होती तो उनके काव्य में एक दो अंग्रेजी शब्दों का आना भी कोई आश्चर्य की बात न होती। मेरे विचार से इनकी भाषा को पंचमेली न कहकर शब्दमेली कहना अधिक उचित है।

कबीर-काव्य में अरबी फारसी शब्दों का बाहुल्य है। इसका प्रमुख कारण है, उनका पर्यटनशील स्वभाव और दूसरा कारण है- साधारण जनता तक अपनी बात पहुँचाने की प्रतिज्ञा। इसीलिए जहाँ भी वे अन्याय, अत्याचार या धार्मिक आडम्बर देखते, तो उनके मुख से काव्यमय बोल निकल पड़ते थे और उस प्रान्त के एक दो शब्द स्वाभाविक रूप से उनके काव्य में आ जाते थे। कबीर के काव्य में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों के कारण भी अरबी एवं फारसी के शब्द आ गए हैं। १००० ई. के लगभग फारसी बोलने वाले तुर्कों ने पंजाब पर कब्जा कर लिया था। अत: इनके प्रभाव से तत्कालीन हिन्दी प्रभावित होने लगी थी। हिन्दी साहित्य के आदिकालीन और भक्तिकालीन काव्य पर अरबी, फारसी, तुर्की तथा पश्तो शब्दों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। रासो तक में फारसी शब्दों का प्रयोग मिलता है।

हिन्दी भाषा में प्रचलित विदेशी शब्दों में सबसे अधिक संख्या फारसी शब्दों की है क्योंकि समस्त मुस्लिम शासकों ने, चाहे वे किसी भी नसल के क्यों न हों, फारसी को ही दरबारी तथा साहित्यिक भाषा की तरह अपनाया। सम्पूर्ण भारत में फारसी भाषा का

ही बोलबाला था। यही कारण है, इस भाषा से सभी भारतीय परिचित थे।

भक्तिकाल में कबीर एक ऐसे महान समन्वयकारी कवि थे, जिन्होंने मुस्लिम शासकों की संस्कृति, धर्म, साहित्य और भाषा से बहुत कुछ ग्रहण किया। उस समय प्रचलित सूफीकाव्य से प्रेमतत्त्व लेकर अपने काव्य क्षेत्र को विस्तृत किया तो दूसरी ओर अपनी काव्य भाषा को फारसी, अरबी, तुर्की तथा पश्तो आदि शब्दों से समृद्ध किया। इनमें से अरबी-फारसी शब्दावली से, सम्पूर्ण कबीर काव्य भरा पड़ा है। किन्तु कबीर ने उसके मूल रूप को ग्रहण नहीं किया है। उन्होंने अधिकतर शब्दों को अत्यन्त विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। शब्दों को तोड़ा है, मरोड़ा है। उसको जनभाषा के अनुकूल बनाया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि वे पहले जनकवि हैं। इसीलिए अरबी-फारसी शब्दावली को उन्हीं के उच्चारण के अनुकूल बनाया है। जैसे 'किताब' को कतेब, कतेबां आदि रूपों में लिखा है। कबीर ने शब्दों के नए-नए अर्थ दिए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कबीर - काव्य में प्रयुक्त शब्दों का महत्व उसके अर्थ पर निर्भर करता है। इस प्रकार से भाषा ने कबीर को नहीं बनाया बल्कि कबीर ने भाषा को बनाया है।

प्रस्तुत लेख में कबीर - काव्य में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्दावली पर विचार किया जायेगा।

कतेब : संज्ञा, पुल्लिंग (अरबी -किताब, पुस्तक, ग्रन्थ)

यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका मूल रूप 'किताब' है। यहाँ किताब शब्द जातिवाचक संज्ञा है। अर्थात् इस शब्द से सभी प्रकार की पुस्तकों का बोध होता है, लेकिन कबीर ने इस शब्द का प्रयोग 'कुरान' के विशिष्ट अर्थ में किया है। यही उनका शब्द कौशल है।

कबीर का यह प्रिय शब्द रहा है। कबीर -काव्य में यह शब्द विकृत एवं अनेक रूपों में प्रयुक्त हुआ है। कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं-

बेद कतेब कहौ क्यूं झूठा झूठा जोनि बिचारै।

वेद, कुरान आदि शास्त्र-ग्रन्थों को झूठा कहने से क्या लाभ? वस्तुत: झूठे वे नहीं, झूठे तो वे लोग हैं जो उन पर विचार नहीं करते हैं -

ऐसा भेद बिगूचन भारी।
वेद कतेब दीन अरु दुनियाँ, कौंन पुरिष कौन नारी।।

कबीर कहते हैं कि भेद-बुद्धि ने भारी वितंडावाद खड़ा कर रखा है। इस भेद-बुद्धि ने नारी, विविध धर्मग्रन्थों, मतों एवं देशों में विभेद कर रखा है।

काजी कौन कतेब बषांनै।

पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जांनै।।

कबीर कहते हैं कि हे काजी ! क्यों व्यर्थ कुरान के पाठ के चक्कर में पड़े हुए हो? इसका पाठ करते-करते तुम्हें न जाने कितना समय व्यतीत हो गया, किन्तु तुम अब भी प्रभु महिमा से परिचित नहीं हो सके।

वेद कतेब इफतरा आई दिल का फिकर न जाई।

कबीर का कथन है कि वेद और कुरान आदि धर्म ग्रन्थ मिथ्या हैं। इसके द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती।

कुरांना कतेबां अस पढ़ि पढ़ि, फिकरि या नहीं जाइ।।

कबीर का कहना है काज़ी मुल्ला तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। कुरान आदि धर्मग्रन्थों का पारायण कर तुम्हें प्रभु की चिन्ता नहीं।

उपर्युक्त 'कतेबा' शब्द के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कबीर ने इस शब्द का प्रयोग कुरान आदि धर्मग्रन्थों के ही अर्थ में किया है।

भिस्त - संज्ञा, स्त्रीलिंग (फारसी - बिहिश्त) बैकुंठ, स्वर्ग

भिस्त मूलत: फारसी के बिहिश्त शब्द का ध्वनि-परिवर्तित रूप है। कबीर काव्य में यह शब्द बैकुंठ, स्वर्ग के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कबीर ने इस शब्द को इतना तोड़ा, मरोड़ा है कि यह अपना वास्तविक रूप ही खो चुका है। कबीर ने भिसती, भिस्त और भिस्ति आदि अनेक रूपों में इस शब्द का प्रयोग किया है।

भिस्त हुसकां दोजगां, दुंदर दराज दिवाल - ईश्वर प्रत्येक स्थल पर वर्तमान है। वह शत्रु का सर्वनाश करता है और अपने दास को समृद्धि प्रदान करता है। उस भक्त के लिए दादर रूप विकार काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ को नष्ट कर नरक को भी स्वर्ग बना देता है।

रोज़ा करैं निवाज़ गुजारै, कलमैं भिसत न होई।

अर्थात् रोज़ा नमाज और कलमा पढ़ने से स्वर्ग नहीं मिलेगा। यहाँ अरबी-फारसी शब्दों पर पंजाबी प्रभाव अधिक है।

तुरुक रोजा - नीमाज गुजारै, बिसमिल बाँग पुकारै।
इकनी भिस्त कहाँ ते होइहै, साँझै मुरगी मारैं।।

अर्थात् मुसलमान रोज़ा नमाज़ आदि धार्मिक कृत्य करते हैं, अपनाते हैं। ऐसे लोगों को स्वर्ग कहाँ से प्राप्त होगा?

अलह-संज्ञा, पुल्लिंग (अरबी, अल्लाह) परमेश्वर, भगवान, खुदा।

(अलह) शब्द का प्रयोग भगवान के अर्थ में ही किया गया है। इस शब्द के अनेक

रूप कबीर-काव्य में मिलते हैं - जैसे अलह, अला, अल्ला.... अल्लह और अल्लाह।

उदाहरण के तौर पर देखिए-

अदया अलह राम की, कुरहैं ऊँणी कूप
ता अला की गति नहीं जानी,
गुरि गुड़ दीया मीठा।
अला एकं नूर उपनाया, ताकी कैसी निन्दा।

अर्थात् प्रभु से ही समस्त संसार का निर्माण हुआ अत: दूसरे की निन्दा कर प्रभु को ही निन्दित करते हैं।

अलह ल्यौं मांपें काहे न रहिये।

ईश्वर से अपनी लगन लगाये रहो और प्रभु - नाम का जाप करो।

मुलां - संज्ञा, पुल्लिंग (अरबी - मुल्ला) मौलवी, मुल्ला, पंडित

एक कहावत मुलां काजी, रांम बिनां सब फोकट बाजी
मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई,
इहि विधि जीव का भरम न जाई।।

कबीर कहते हैं कि हे मौलवी साहब! इन बाह्याचारों के ढोंग में न पड़कर ईश्वर के न्याय के अनुरूप आचरण करो।

मुलनां बंग देई सुर जांनी, आप मुसला बैठा तांनी। मौलाना ईश्वर को (बहरा जानकर) बांग देता है और स्वयं मुसले (नमाज पढ़ने की दरी या चटाई) पर बैठ जाता है। चाहे उसका तत्त्व हृदयंगम करे अथवा नही। वह इसमें ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है।

दोजग - संज्ञा, पुल्लिंग (फारसी - दोज़ख) नरक

दोजग मूलत: फारसी के दोज़ख शब्द का ध्वनि परिवर्तित रूप है। मुसलमानों के अनुसार दोज़ख सात विभागोंवाले नरक का नाम है। कबीर ने दोजग शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से नरक के लिए ही किया है। इसका एक रूप दोजग भी मिलता है -

इस सन्दर्भ में एक उद्धरण द्रष्टव्य है -

भिस्त हुसकां दोजगां, दुंदर दराज दिवाल। कबीर - काव्य में कुछ पद तो ऐसे मिलते हैं जिनकी पूरी की पूरी शब्दावली फारसी और अरबी शब्दों से बनी हुई है - यथा-

वेद-कतेब इफतरा भाई दिल का फिकर न जाई।
टुक दम करारी जो करह हाजिर हजूर खुदाई।।

बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरि परेशानी माहिं।
इह जु दुनिया सहरा मेला दस्तगीरी नाहिं।।
दरोग पढ़ि पढ़ि खुशी होइ बेखबर बाद बकाहि।
हक सच्चु खालक खलकम्या ने स्याम मूरति नाहि।।
आसमान म्याने लहँग दरिया गुसल करद न बूद।
करि फिकरु दाइन लाइ चसमे जहँ तहाँ मौजूद।।
अल्लह पाक पाक है सक करो जो दूसर होइ।
कबीर कर्म करीम का उह करे जानैं सोइ।।

उपर्युक्त पद में से कुछ अरबी-फारसी शब्दों का भाषा वैज्ञानिक परिचय दिया जा रहा है।

इफतरा - संज्ञा, पुल्लिंग (अरबी - अफ्तिरा) तोहमत, लांछन

इफतरा मूलत: अरबी के इफ्तिरा का थोड़ा विकृत रूप है। यहाँ इफतरा मिथ्या के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

दम - संज्ञा, पुल्लिंग (अरबी - फारसी) ताक़त, शक्ति।

यह मूलत: अरबी - फारसी का शब्द है। इसके रूप में कोई परिवर्तन नहीं किया गया।

करारी - संज्ञा पुल्लिंग (अरबी करार) धैर्य, सन्तोष।

हाजिर - विशेषण (अरबी- हाज़िर) विद्यमान, मौजूद।

हजूर - संज्ञा, पुल्लिंग (अरबी हुजूर) बादशाह का दरबार।

यहाँ इस शब्द का तात्पर्य है खुदा के दरबार से।

खुदाई - संज्ञा, स्त्रीलिंग (फारसी) ईश्वरता।

बंदे - संज्ञा , पुल्लिंग (फारसी - बंदा) सेवक, दास।

सहरु - संज्ञा, पुल्लिंग (फारसी - शहर) नगर , शहर।

कबीर काव्य में थोड़े विकृत रूप में प्रयुक्त है, यह शब्द।

दस्तगीरी - संज्ञा, स्त्रीलिंग (फारसी) मदद, सहायता, सहारा।

दरोग - संज्ञा, पुल्लिंग (फारसी) असत्य, झूठ।

कबीर कला की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने शब्दों के व्यवहृत् रूपों को कभी सँवारने का प्रयास नहीं किया । वह अपनी अलौकिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए उतावले से रहते थे। अतएव मस्ती के आलम में आकर वाणी सहजोन्मेष काव्य बन गया और अभिव्यक्ति का माध्यम एक सफल कवि की भाषा बन गई। यही कारण है कि कबीर की रचनाओं में हमें कोई बनावट नहीं मिलती है।

●●●●●